परमब्रह्मरूपिणी माँ

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

सिर्फ एक शब्दाक्षर है 'माँ'। आत्मतत्त्वविद् शास्त्रकारगण इस शब्दाक्षर को अव्यय कहते हैं अर्थात् जिसका व्यय अथवा लय नहीं है। जो एक और अद्वितीय है अथच बहुधा अनन्तरूप धारण करने के लिए महाशक्ति जिसमें चिर सन्निवेशित रहती है, वही परमब्रह्म है, परात्पर ब्रह्म चैतन्य है, वही अनन्त और भूमा है। एक बीज के भीतर चणकाकार में दो समरूप दानों की तरह ''बीज'' शब्द के मध्य बी+ज=बीज, यह दो वर्ण हैं। 'बी' अर्थात् विशिष्ट या विराट रूप में एवं 'ज' का अर्थ है जन्म।

जो महाशक्ति विशिष्टभाव में विराट् रूप धारण कर बहुधा धारा में सृष्टिमध्य आत्म-विस्तार करती हैं उनका नाम है ''बीज''।

शरीर की शक्ति जैसे शुक्र, आत्मा अथवा माँ की शक्ति है, वैसे ही परमब्रह्म की परमात्म-अमृतमय सृजन शक्ति है वाक् शक्ति। यह वाक् ब्रह्मशक्तिरूपा सनातनी हैं, जो स्वयं-प्रकाश शक्ति परमब्रह्म का स्वभाव हैं। बीज के भीतर वृक्ष एवं वृक्ष के भीतर बीज जिस प्रकार नित्य वर्तमान रहता है, उसी प्रकार व्यक्त व अव्यक्त रूप दोनों अवस्था भी इनमें अनन्तरूप में रहती हैं। ब्रह्म की इस अखण्ड वाक् शक्ति का नाम है 'ओंकार', जो है ब्रह्मबीज। इस ओंकार रूप शब्द-ब्रह्म की इच्छारूपी शक्ति ही है 'माँ'। माँ की सूक्ष्म अवस्था ही है महामाया, जो इच्छारूपी होकर योगमाया और माया होती हैं। योगमाया-शक्ति द्वारा माँ जगत् सृजन करती हैं और उनके तेज:प्रभाव से ही विश्व समुद्भूत होकर ब्रह्माण्ड में माया-प्रपंचमय जगत् प्रकाशित होता है। जिस शक्ति के प्रभाव से माया व योगमाया को ज्ञात हुआ जा सकता है, जो योगीगण के लिए चिन्तनीया हैं, वह जगन्मयी दुर्गा ही परमतत्त्व ''माँ'' हैं। माँ ब्रह्ममयी, ब्रह्म की इच्छाशक्ति है; ये अरूपा और सर्वरूपा भी हैं। लीलामार्ग में माँ पुरुष व प्रकृति दोनों ही हैं। ब्रह्म की इच्छाशक्ति ही आद्याशक्ति माँ है, जो स्वरूप में देवी भगवती स्वरूपिणी है। योगमाया है परमब्रह्म की अंतरंगा शक्ति एवं महामाया परमब्रह्म की बहिरंगा शक्ति हैं। दोनों ही ब्रह्म की प्रकृति हैं। एक ही आद्याशक्ति पंचतन्मात्रा व पंचभूत में अतिसूक्ष्माति-सूक्ष्म भाव में आत्मगोपन करते हुए विराज करती है। पराशक्ति निर्गुणा एवं अपरा शक्ति भोगात्मिका हैं। आत्मसत्ता के मध्य कुलकुंडलिनी चित् शक्ति एवं कुंडलिनी सत्ता की जीवनी शक्ति या प्राणशक्ति, अर्थात् प्रकृति है। स्थूल एवं सूक्ष्म शक्ति का पंच प्रकार में विकास होता है; यथा परा, अपरा; योगमाया, महामाया और कुंडलिनी। आधार, काल एवं पात्र के अनुरूप ही शक्ति की क्रिया विभिन्न गुणसम्पन्न होती है। जैसे क्षिति में उर्वरता, जल में आर्द्रता, अग्नि में दाहिका, हवा में स्पर्श एवं व्योम में शब्द-शक्ति विराजित है। वेद का प्रणव, वेदान्त का ब्रह्म, तंत्र की महाशक्ति, योग की आत्मा एवं पुराण का भगवान मूलत: एक ही सर्वव्यापी ब्रह्म है। सगुण एवं निर्गुण का सम्मिलित भाव ही ब्रह्म है। सगुण में महाशक्ति या माँ एवं निर्गुण में शिवब्रह्मरूपी 'म' कार अथवा 'बाबा' है। शिवब्रह्म लीलामय और देवी शिवानी शक्ति लीलामयी हैं। ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वर स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण की अवस्था है, ये सब ही खंड महाशक्ति के आधार मात्र है। यह त्रयी शक्ति की एकता ही महाशक्ति, आदिशक्ति या ब्रह्ममयी ''माँ'' है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्व, रज: व तम: इन तीन गुणों की साम्य अवस्था ही प्रकृति है। इसीलिए ''माँ'' त्रिगुणमयी हैं। इस कारण प्रकृति को त्रिगुणमयी कहा जाता है। काल के संघात से 'हुं' कार शब्द करते हुए प्रकृति द्विधा-विभक्त हुई। एक से द्विअंश की उत्पत्ति हुई है। इसलिए परस्पर की मिलनेच्छा स्वभावगत धर्म है। स्वाभाविकभाव में द्वि-अंश की परस्पर मिलनेच्छा जब असम्भव हुई तब प्रकृति-पुरुष विपरीत भाव में मिलन साधन में तत्पर हुए। प्रकृति-पुरुष के इसरूप मिलन अथवा संयोग से ही आकाश की सृष्टि हुई। इस आकाशवक्ष पर ही योगमाया अवलम्बन पूर्वक महाइच्छाधीन होकर माँ महामाया ने निज शक्ति तेज बल से मायिक जगत्रूपी विश्व का सृजन किया है।

''यां प्रपश्यन्ति देवेशीं भक्तानुग्राहिणो जनाः।
तामाहु परमं ब्रह्म दुर्गां भगवतीं मुने।।''

–अथर्व वेद

''जिसकी कृपा से भक्तजन तीव्र भक्ति के द्वारा विश्वजननीरूप में जिनका दर्शनलाभ करते है, वे ही ब्रह्ममयी, ब्रह्मतत्त्व हैं।'' बहुरूप में बहुभाव में शिव-दुर्गा, कृष्ण-काली या हर-हरि, जो भी विग्रह हो, जब किसी साधक में माँ की पूजा करने की तीव्र वासना मन में जागृत हो उठती है, तब शुद्धाभक्ति के प्रभाव से साधक के अन्तःसत्ता मध्य माँ की भावमय मूर्ति अंतराकाश पर प्रकटित हो उठती है। स्वयं के ज्ञानचक्षु द्वारा विश्व माँ का विश्ववरेण्य चिन्मयीरूप तब साधक भक्तिमुग्ध नयन से अपने भावों में विगलित होकर दर्शन कर सकता है। जहाँ भक्ति नहीं है, वहाँ भगवान भी नहीं है, माँ भी नहीं है। शुद्धाभक्ति भाव में परिस्फुट होने से ही तब भावमूर्ति का स्पंदन हृदय में उपलब्ध होता है। अंतःस्थित ये समस्त भावमूर्तियाँ प्राणवंत होकर साधक को अखण्ड ज्ञान प्रदान करती हैं। इसको ही दैवी कृपा या माँ की कृपा कहा जाता है। जो साधक अन्तर में माँ का चिन्मयीरूप प्रत्यक्ष उपलब्धि करता है वह ही शुद्धा-भक्त है। इस शुद्धा-भक्त के मध्य भक्ति की भावमय शक्ति से ही वाह्यिकभाव में प्राण-प्रतिष्ठा करते हुए मृण्मयी माँ के मध्य चिन्मयी माँ की पूजा की जाती है। भक्ति का तीव्र संवेग, भाव न रहने से वाह्यिक सब मूर्तियाँ या विग्रहादि निष्प्राण रह जाते हैं अतएव साधक की तीव्र भक्ति से, शुद्धाभक्ति की शक्ति से वाह्यिक विग्रह में प्राण-प्रतिष्ठा होती है। भक्ति = प्राण एवं महाप्राण; दर्शन = ज्ञान एवं महाज्ञान; स्पर्शन = श्रद्धा एवं निष्ठा; आस्वादन = आनन्द एवं लीला माधुर्य। शुद्धाभक्ति ही है भगवान या भगवती, परमेश्वर अथवा परमेश्वरी। जहाँ भक्ति रहती है वहाँ भगवान या भगवती की महाभावमय चिन्मय मूर्ति विराजित रहती है। पंचभूत से हमारी सत्ता की देह का जैसा निर्माण होता है, वैसे ही शुद्धा-भक्ति से भगवान या भगवती की सगुण आकृति मूर्त होती है। आकाशरूपी दिक्‌मंडल जिसका आच्छादनरूप वस्त्रांचल है, आकाश-वक्ष पर नक्षत्रपुंज जिसके पुष्प हैं, स्निग्ध सुगन्धी वायु जिसकी धूप है, आदित्यरूपी पवित्र अग्नि जिसका मंगल दीप है, नैवेद्य जिसकी अमृतमय स्वर्गीय सुधा है, किस सामग्री द्वारा उनकी पूजा होगी? कौन उनको सजाएगा? वे इस विश्व के मध्य अपरूप विश्वप्रकृति की साज में सज्जित होकर ही प्रकटित हुए हैं! इसीलिए अपना कुछ देकर पूजा करने के लिए या सज्जित करने के लिए भक्त के लिए माँ ने कुछ भी बाकी नहीं रखा है। परन्तु हमारे पास उन्हें देने का और क्या है? ''माँ'' कहकर वात्सल्य भाव में उनको पुकारने के अलावा और देने को क्या है? इसलिए ही तो सृष्टि में आदि से अन्त, जन्म से मृत्यु तक सकल जीव-जन्तु प्राणी मात्रेण ही ''माँ'' शब्द उच्चारण करता हैं। इसीलिए माँ शब्दाक्षर ही सर्वजीव का महामंत्र स्वरूप एकमात्र बीजमंत्र है।

कर्म, ज्ञान एवं भक्ति के द्वारा माँ की पूजा होती है। (१) कर्म, आधार या पृथ्वी माँ के पूजा के कर्म में विश्वास ही भक्त के आधार का सात्विक गुण है। जिसके द्वारा साधक मातृपूजा का व्रत ग्रहण करता है। दूसरी ओर जीव का कर्मक्षेत्र या आधार हुई यह पृथ्वी। (२) ज्ञान, पितृरूपा है। जो शिव स्वरूप निर्गुण है अथच सगुण होकर धरणी का भरण-पोषण करते हैं, वे ही मंगलमय और मंगलकर हैं। दूसरी ओर ज्ञान, साधक के आधार को शुद्ध विवेक, विचारादि प्रदान करते हुए साधक के संकल्प को सिद्ध कराता है। (३) भक्ति हुई माँ स्वयं। भक्ति की शक्ति से ही साधक पूर्ण सिद्ध और आप्तकाम होने में सक्षम होते हैं। कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों को लेकर ही माँ की पूजा करनी पड़ती है। ''पूजा'' अर्थात् श्रद्धा निवेदन। पूजांग में है 'आराधना' या आह्वान, 'प्रार्थना' अर्थात् कृपा भिक्षा। तत्पश्चात् 'भजना' यानि महिमा कीर्तन; इसके मध्य भावाप्लुत होकर स्तव-स्तुति या भगवत् महिमा गुणगान करना अर्थात् वन्दना है। ये समस्त बहिरंग की पूजा है। तत्पश्चात्, आसन अर्थात् कूटस्थ में मन की स्थिति। इसे अन्तर्मुखीन भाव में अवस्थान करना कहा जाता है। तत्पश्चात् न्यास अर्थात् देहाभ्यन्तरस्थ नाड़ी शुद्धिकरण है एवं मन में पवित्रताभाव धारण करना है। अन्तर साधना में मंत्र-न्यास, बीज-न्यास इत्यादि है। इसके बाद ध्यान अर्थात् बुद्धि के द्वारा आराध्य को आवाहन करना; धारणा अर्थात् बुद्धि कूटस्थ के गगन गुहा में स्थापन करना; जप अर्थात् भक्ति सूत्र द्वारा आराध्य के साथ बंधन। तत्पश्चात् यज्ञ अर्थात् आत्मसमर्पण अथवा हवन अर्थात् विषयीभूत मानस द्रव्य का दाहन। तब आचमन अर्थात् प्राण का मन्थन करके सृष्टितत्त्व की सुधा को आहरण करना; इसके बाद प्राणायाम द्वारा देहाभ्यन्तरस्थ विच्छिन्न प्राणशक्ति को हृदय में केन्द्रीभूत करके महाप्राण में प्रतिष्ठित करवाना चाहिए। पूजा

समापनान्त प्रणाम अर्थात् अपने अहम् का आराध्य के चरणों में अर्घ्य प्रदान करना। दुर्गा, काली, कृष्ण, नारायण इत्यादि जिस मूर्ति की ही साधक साधना क्यों न करे, यदि वह मूर्ति प्राणवन्त होकर साधक को आनन्द प्रदान न कर सके तो यह होने से साधक का साधन या भजन वृथा हो जाता है। तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान के माध्यम से आर्य ऋषिगणों ने उपलब्धि की थी कि त्याग एवं स्वप्रवृत्ति की निवृत्ति के माध्यम से ही भगवान या सच्चिदानन्द को लाभ करना सम्भव होता है। इस सच्चिदानन्द रूप आनन्द को निर्गुण–सगुण, इन दोनों अवस्था में लाभ करना ही परब्रह्मस्वरूपा आनन्दमयी ''माँ'' को ज्ञात होना एवं पाना है।

हिन्दी अनुवाद – मातृचरणाश्रिता श्रीमती ज्योति पारेख